हमें कैसे पता चला
अंतरिक्ष के बारे में
आइजैक एसिमोव
भारत ज्ञान विज्ञान समिति

हमें कैसे पता चला

अंतरिक्ष के बारे में
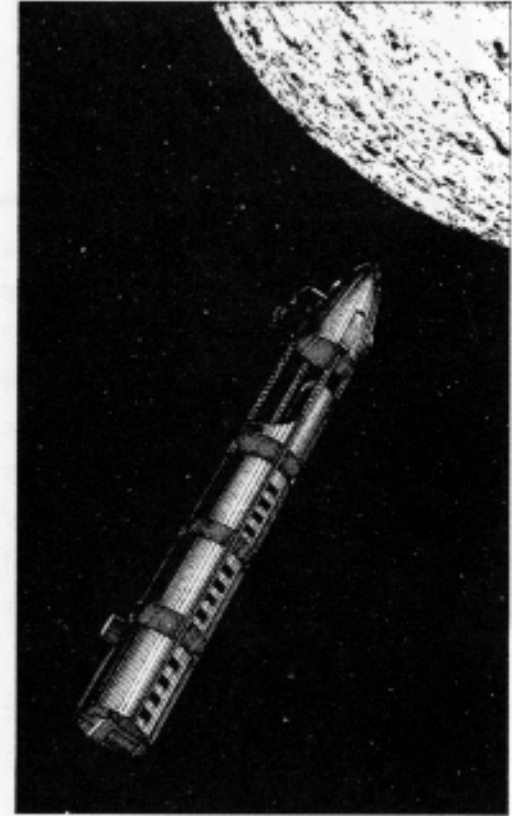
आइजैक एसिमोव

भारत ज्ञान विज्ञान समिति

नव जनवाचन आंदोलन

इस किताब का प्रकाशन भारत ज्ञान विज्ञान समिति ने 'सर दोराबजी टाटा ट्रस्ट' के सहयोग से किया गया है। इस आंदोलन का मकसद आम जनता में पठन-पाठन संस्कृति विकसित करना है।

हमें कैसे पता चला अंतरिक्ष के बारे में आइजैक एसिमोव	Hamen Kaise Pata Chala Antariksha ke bare men *Isaac Asimov*
हिंदी अनुवाद अंशुमाला गुप्ता	*Hindi Translation* Anshumala Gupta
कॉपी संपादक राधेश्याम मंगोलपुरी	*Copy Editor* Radheshyam Mangolpuri
कवर व ग्राफिक्स अभय कुमार झा	*Cover & Graphics* Abhay Kumar Jha
प्रथम संस्करण मार्च 2008	*First Edition* March 2008
सहयोग राशि 20 रुपये	*Contributory Price* Rs.20.00
मुद्रण अवनीत ऑफसेट प्रेस नई दिल्ली - 110 018	*Printing* Avneet Offset Press New Delhi - 110 018

Publication and Distribution

Bharat Gyan Vigyan Samiti

Basement of Y.W.A. Hostel No. II, G-Block, Saket , New Delhi - 110017

Phone : 011 - 26569943, Fax : 91 - 011 - 26569773

email: bgvs@vsnl.net

BGVS MAR 2008 1K 2000 NJVA 0142/2008
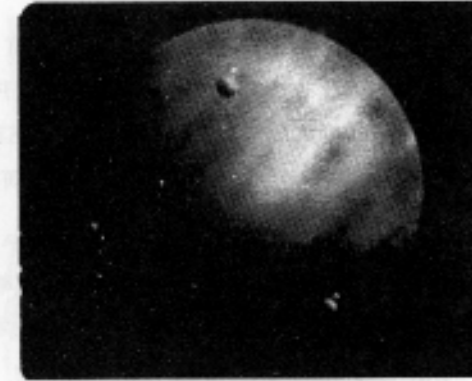
आइजैक एसिमोव विज्ञान कथा लेखन में संसार की सबसे प्रसिद्ध हस्तियों में से एक हैं। वे विज्ञान के विकास के इतिहास के भी जाने-माने विशेषज्ञ हैं। उनके पास विज्ञान के चमत्कारों को आम आदमियों – चाहे छोटे हों या बड़े – को समझाने की विशेष क्षमता है। हम यहां विज्ञान की असल घटनाओं के बारे में बता रहे हैं, जिन्हें पढ़ने में कथा सुनने का आनन्द लिया जा सकता है।

प्राचीन समय से लोग ऊंचे उड़ने के ख्याल से क्यों इतने चमत्कृत रहे हैं? हमने बाहरी अंतरिक्ष के विषय में कैसे जाना? आइजैक ऐसिमोव उड़ान के पहले प्रयासों की रोचक कहानी सुना रहे हैं। पहले राकेटों का छोड़ा जाना और आखिरकार पहले मानवों को अंतरिक्ष में भेजना – यह इंसान की उपलब्धियों की रोमांचक कथा है।

उड़ना

लोग चलकर, दौड़कर, उछल-कूदकर, रेंगकर, तैरकर या पहियों को घुमाकर आगे जाते हैं। वे चाहे जो भी करें, उनका शरीर लगभग हमेशा जमीन को छूता रहता है। कोई आदमी कूदकर हवा में उड़ता है, यह केवल कुछ क्षणों के लिए होता है और फिर वह दोबारा जमीन पर आ जाता है।

यह बात सभी जीव-जंतुओं पर लागू नहीं होती। चिड़िया, चमगादड़ और कीड़े – सभी उड़ सकते हैं। उनके पंख हवा को धक्का देते हैं। जब वे उड़ते हैं, हवा उन्हें उसी तरह ऊपर उठाए रहती है, जैसे जमीन हमें उठाए रहती है।

उड़ने में कितनी आजादी दिखती है। तुम्हें चट्टानों और पहाड़ियों पर चढ़ना नहीं पड़ता या नदियों के जरिए तैरना नहीं पड़ता या कीचड़ में पांव नहीं धंसाने पड़ते। तुम बस साफ हवा में, जिस दिशा में चाहो बढ़ सकते हो। मुझे पक्का विश्वास है कि ऐसे मौके जरूर रहे होंगे जब तुमने चाहा होगा कि काश, तुम भी अपनी बाहें हिलाकर चिड़िया की तरह उड़ान भर सकते।

प्राचीन समय में लोगों की भी ऐसी चाह थी कि वे उड़ सकें और उन्होंने ऐसी कथाएं बनाई जिनमें उड़ना संभव था। उन्होंने ऐसी कालीनों की कल्पना की जो सिर्फ एक जादुई शब्द के बोलने पर उड़ सकती थीं। उन्होंने पंखों वाले घोड़ों की कहानियां कहीं जो अपने सवारों को हवा के जरिए तेजी से ले जा सकते थे।

सबसे प्रसिद्ध पुरानी कहानी लगभग 2500 साल पहले प्राचीन यूनानियों ने बनाई। उन्होंने एक चतुर आविष्कारक डेडॉलस और उसके बेटे इकारस की कथा बनाई जो क्रेट के पास एक द्वीप पर कैद थे। डेडॉलस के पास कोई नाव नहीं थी, तो उस द्वीप से निकलने के लिए उसने अपने और अपने बेटे के लिए पंख बनाए। उसने लकड़ी का एक हल्का ढांचा बनाया, उसे मोम से पोता और मोम में चिड़ियों के
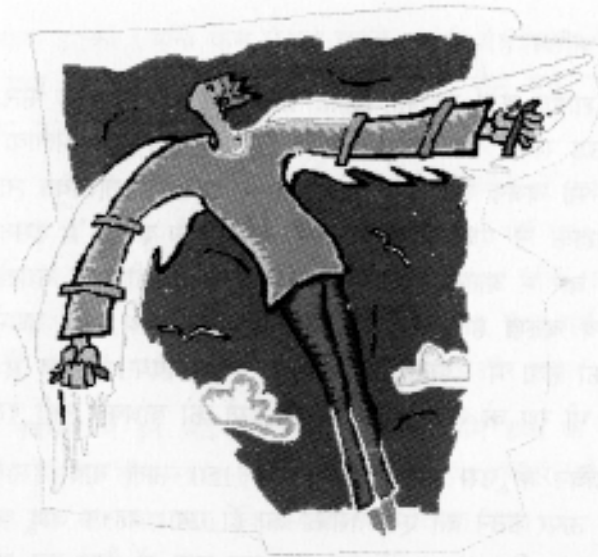
पर चिपका दिए। इन पंखों को ऊपर-नीचे हिलाने से वह हवा में उठकर उड़ सकता था। वह और इकारस एक साथ उड़ निकले। डेडॉलस करीब 805 किलोमीटर दूर उड़कर सिसली पहुंचा, परन्तु इकारस उड़ने का मजा लेने के लिए, बहुत ऊंचा उड़ता गया। सूर्य के ज्यादा पास पहुंचने पर गर्मी से मोम पिघलने लगा। उसके पंखों पर चिपके पर ढीले होकर गिरते गए और इकारस नीचे गिरकर मर गया।

यह कहानी बिना शक एक असम्भव घटना है। केवल पंख लगाकर कोई नहीं उड़ सकता, चाहे उन पर चिड़ियों के पर भी क्यों न चिपके हों। जो चीज महत्वपूर्ण है वह है मांसपेशियां, जो इन पंखों को इतनी ताकत से ऊपर नीचे फड़फड़ा सकें, ताकि शरीर हवा में उठ सके। जितना ज्यादा भारी कोई शरीर होगा, उतनी ही ज्यादा ताकत इन मांसपेशियों में होनी चाहिए ताकि वह उड़ सके। जिस तरह की मांसपेशियां प्राणियों में होती हैं, ज्यादा से ज्यादा भारी उड़ने वाला प्राणी लगभग 22 किलो का हो सकता है।

कोई भी इंसान पंख हिलाने के लिए अपनी मांसपेशियों का इस्तेमाल करके उड़ नहीं सकता। किसी घोड़े के लिए तो यह करना

और भी कठिन है।

पर शायद कोई व्यक्ति किसी प्रकार के रथ से कई सारे पक्षी बांधकर उड़ सके? हर चिड़िया अपने खुद के वजन के अलावा बहुत ही थोड़ा-सा वजन उठा पाएगी। 1630 में फ्रांसिस गॉडविन नाम के अंग्रेज लेखक ने एक कहानी लिखी 'मैन इन द मून'। उसने एक खोजी के बारे में बताया जिसने एक रथ में बहुत-सी बड़ी बत्तखें बांध दी थीं। ये बत्तखें हवा में उड़ीं। उन बत्तखों ने रथ और उसमें बैठे आदमी को हवा में उड़ाकर चंद्रमा तक पहुंचा दिया। असल में कभी किसी ने भी रथ के साथ बहुत-सी चिड़ियों को बांधकर नहीं देखा है।

गॉडविन के उस पुस्तक लिखने के 150 साल बाद, इंसानों को जमीन से ऊपर उठने का एक तरीका आ ही गया। वह न जादू था और न अपने बाजू हिलाकर उठने का था। वह हवा में तैरने का था।

एक फ्रांसीसी, जोस्फे मोन्टगोल्फिर और उसके छोटे भाई, एटिएन ने ध्यान दिया कि जब आग से धुआं निकलता है तो अपने साथ हल्की चीजों को ऊपर उठा देता है। ऐसा प्रतीत हुआ कि गर्म हवा ठंडी हवा

से ज्यादा हल्की (यानी कम घनत्व वाली) होती है। इसका अर्थ है कि गर्म हवा ठंडी में से ऊपर की ओर उठेगी, जैसे एक लकड़ी का टुकड़ा पानी में ऊपर की ओर उठता है।

5 जून 1783 को फ्रांस के अपने शहर अनोने में उन भाइयों ने एक बड़े-से कपड़े के थैले को गर्म हवा से भरा। गर्म हवा ऊपर उठी और उसने अपने साथ उस थैले को भी उठा लिया और 10 मिनट में 2.4 किलोमीटर तक वह हवा में तैरता रहा। तब तक गर्म हवा ठंडी हो गई थी और यह पहला गुब्बारा जमीन पर उतर गया।

नवम्बर में इन भाइयों ने पेरिस में एक गर्म हवा के गुब्बारे का प्रदर्शन किया। तीन लाख लोगों की भीड़ ने इस गुब्बारे को उठते हुए देखा। इस बार यह 9.6 किलोमीटर तक तैरता रहा।

उसी समय एक बहुत हल्की गैस– हाइड्रोजन– खोजी जा चुकी थी। यह गर्म हवा से भी बहुत कम घनत्व की होती है । जैक्स चार्ल्स नाम के एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक ने सुझाया कि गुब्बारों में हाइड्रोजन भरी जाए। यह किया गया और हाइड्रोजन से भरे गुब्बारों ने टोकरियां हवा में उठा दीं जिनमें लोग भी बैठे थे। वर्ष 1800 की सदी के शुरू में बहुत लोग गुब्बारों में घूमने गए। पहली बार लोग हवा में कई किलोमीटर तक उठ सके।

गुब्बारे केवल हवा की दिशा के साथ-साथ बह सकते हैं। लेकिन मानो तुम उस टोकरी के साथ किसी प्रकार का इंजन लगा दो जो एक प्रोपेलर (घूमने वाला पंखा जो हवा को पीछे फेंकता है) को चलाता हो। तेजी से घूमता यह पंखा गुब्बारे को हवा में किसी भी दिशा में ले जा सकता है, जिस प्रकार एक जहाज में लगा पंखा उसे पानी के जरिए आगे ले जाता है। ऐसा प्रोपेलर लगा गुब्बारा एक डिरिजिबिल कहलाता है, यानी ऐसा गुब्बारा जिसे दिशा दी जा सके।

पहला डिरिजिबिल एक जर्मन, काउंट फर्डिनेंड वॉन जेपेलिन, ने बनाया। उसने गुब्बारे को एक लम्बे सिगार या कुल्फी की शक्ल के
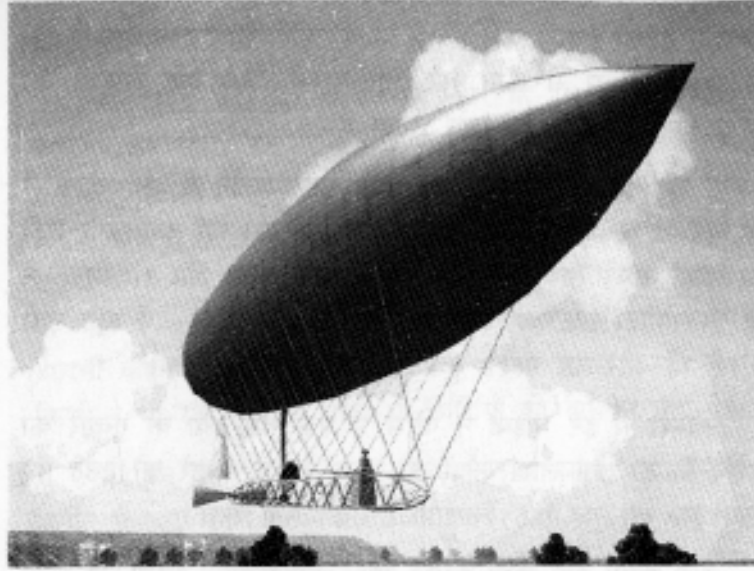
डिरिजिबिल

खोल में रखा जो हल्की धातु एल्युमिनियम से बना था, ताकि वह हवा को आसानी से काट सके। जुलाई 1900 को पहला डिरिजिबिल हवा के जरिए चल सका। अब लोग अपनी पसंद की किसी भी दिशा में उड़ सकते थे ।

40 साल तक डिरिजिबिल ज्यादा बड़े और बेहतर बनाए जाते रहे, परन्तु उनमें भरी हाइड्रोजन गैस खतरनाक थी। हाइड्रोजन ज्वलनशील होती है और विस्फोट कर सकती है। उसकी जगह एक अन्य हल्की गैस, हीलियम, इस्तेमाल की जा सकती है। यह हाइड्रोजन जितना अच्छा तो नहीं उठाती पर यह कभी भी आग नहीं पकड़ती। तब भी डिरिजिबिल तेजी से नहीं चलते थे और मजबूत नहीं थे। वे तूफानों में आसानी से टूट जाते थे।

बेशक, कुछ चीजें हवा में तब भी उड़ती हैं जब वे हवा में तैरने के लिए बहुत घनी होती हैं। पतंग हवा से ज्यादा घनी होती है, पर इसलिए तैरती है, क्योंकि यह हवा के सामने एक बड़े क्षेत्रफल वाली सतह पेश करती है। वह हल्के से झोंके को भी पकड़कर उसके द्वारा उठाई जाती है। मान लो, अगर एक पतंग को इतना बड़ा बनाया जाए कि वह एक आदमी को उठा सके?

बहुत हल्की लकड़ी से नाव जैसी चीजें बनाई गई और लकड़ी के चपटे टुकड़े जैसे पंख उनसे लगाए गए, ताकि वे ज्यादा हवा को घेर सकें । ऐसे ग्लाइडर इतने बड़े बनाए जा सकते थे कि वे एक आदमी को उठा सकें । अगर वे हवा में काफी ऊंचाई से छोड़े जाते, तो वे काफी देर हवा में टिक सकते थे, हवा के झोंकों और ऊपर उठने वाली हवा की धाराओं पर तैरते हुए। वर्ष 1890 तक ग्लाइडरों का प्रयोग बहुत लोकप्रिय हो चुका था ।

शुरुआती ग्लाइडर, गुब्बारों की तरह, केवल उसी दिशा में जा सकते थे जहां उन्हें हवा ले जाती थी। क्या एक ग्लाइडर में भी एक इंजन लग सकता था जो एक पंखे को घुमाता, जैसा कि वॉन जेपेलिन ने गुब्बारे पर लगाया था?
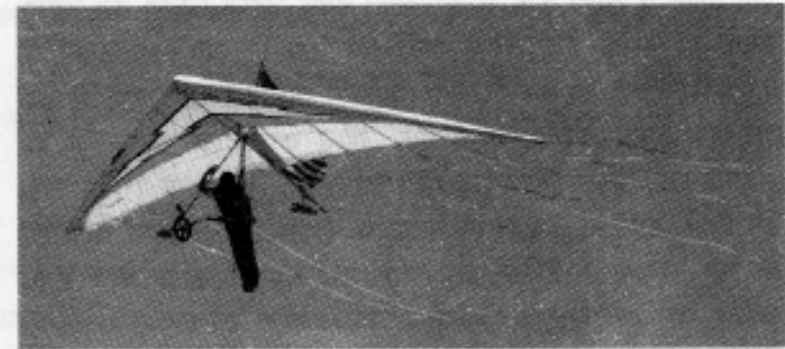
ग्लाइडर

डेटन, ओहायो राज्य में दो अमरीकी साइकिल निर्माताओं, ऑरविल राइट और उसके भाई विल्बर ने तय किया कि वे ऐसा करने की कोशिश करेंगे। उन्होंने ऐसे ग्लाइडर बनाए जो हवा का पूरा फायदा ले सकें और जिनमें ऐसी मोटर की बिजली से चलने वाले इंजन हों जो ज्यादा से ज्यादा हल्के हों ।

पहला हवाई जहाज

राइट बन्धु

17 दिसम्बर 1903 को अमरीका के नार्थ कैरोलिना राज्य में किटी हॉक नामक स्थान पर एक मोटर चालित ग्लाइडर ने ऑरविल राइट को हवा के जरिए यात्रा करवाई। यह पहला हवाई जहाज था। यह हवा में कुल एक मिनट तक ही ठहरा और इसने केवल 260 मीटर तक यात्रा की, परन्तु इसने यह दिखाया कि ऐसा करना संभव है।

हवाई जहाज ज्यादा बड़े और बेहतर इंजनों के साथ बनाए जाने लगे ताकि वे ज्यादा तेजी से उड़ सकें। हवाई जहाज जितना तेज उड़ेगा, उतना ही ज्यादा हवा उसके पंखों को उठाएगी और वह उतना ही ज्यादा भारी भी हो सकेगा। वर्ष 1908 में ऑरविल राइट हवा में एक घंटे तक रुका। वर्ष 1909 में एक जहाज को इंग्लिश चैनल के पार उड़ाया गया। पहले विश्वयुद्ध में हवाई जहाज आपस में भिड़ने लगे। 1927 में अमरीकी उड़ानकर्ता चार्ल्स ए. लिंडबर्ग अटलांटिक महासागर के पार न्यूयार्क से पेरिस तक उड़ा। उसे 33 घंटे लगे। आज हवाई जहाज इतने बड़े हो चुके हैं कि वे सैकड़ों लोगों को ले जा सकते हैं। कुछ वायुयान 1600 किलोमीटर प्रति घंटा या इससे ज्यादा गति से उड़ सकते हैं और अटलांटिक महासागर को 3 घंटे में पार कर सकते हैं।

वायुयानों ने आज डिरिजिबिल को पूरी तरह हटा दिया है। परन्तु साधारण गुब्बारे आज भी पृथ्वी की सतह से बहुत ऊपर की हवा के अध्ययन के लिए इस्तेमाल होते हैं। हल्के पतले प्लास्टिक के गुब्बारे पृथ्वी की सतह से 50 किलोमीटर ऊपर तक उठ सकते हैं।

हवा के बिना उड़ना

अब जब हमारे पास गुब्बारे और हवाई जहाज हैं जो लोगों को हवा में कई किलोमीटर ऊंचे ले जा सकते हैं, हम क्यों ऊंचा, और अधिक ऊंचा, उड़ते नहीं जाते, जब तक कि हम चांद तक न पहुंच जाएं?

दिक्कत यह है कि गुब्बारे और साधारण वायुयान हवा पर निर्भर करते हैं। गुब्बारे हवा पर तैरते हैं। चलते हुए वायुयान को हवा ऊपर उठाए रखती है। इसके अलावा, हवाई जहाजों को ऑक्सीजन गैस की भी जरूरत होती है, जो हवा में मौजूद होती है। यह गैस इन यानों के ईंधन के साथ मिलकर इनके इंजनों को चलाती है।

प्राचीन लोगों ने अपने-आप मान लिया था कि हवा अन्तहीन ऊंचाई तक ऊपर फैली हुई है, चंद्रमा तक भी और ग्रहों व तारों तक भी। जिन लोगों ने चंद्रमा तक पहुंचने की कहानियां लिखीं, वे शायद ऐसा कुछ सोचते थे कि धरती से चांद तक फैले हवा के सागर को उतनी ही आसानी से पार किया जा सकता है जैसे पानी के सागर को।

लेकिन बीच में हुई नई खोजों ने हवा के प्रति हमारे नजरिए को बदल दिया।

1643 में इटली के वैज्ञानिक इवांजलिस्टा टॉरिसेली ने एक कांच की ट्यूब ली, करीब 120 से.मी. लम्बी। यह एक ओर से बंद थी। उसने उसे पारे से भर दिया। टॉरिसेली ने फिर खुले सिरे पर डॉट लगाया और इस ट्यूब को पारे से भरे एक बर्तन में उलटा कर दिया। अब इस पर लगी डॉट को हटा दिया।

तुम शायद सोचोगे कि सारा का सारा पारा नीचे गिर जाएगा, पर केवल कुछ ही गिरा। बर्तन में भरे पारे की सतह पर पड़ने वाले हवा के दबाव ने पारे की 76 सेंटीमीटर ऊंचाई को ट्यूब में उठाए रखा। टॉरिसेली ने पहला बैरोमीटर बना लिया था जिससे हवा के दबाव में आने वाले उतार-चढ़ाव को नापा जा सकता था।
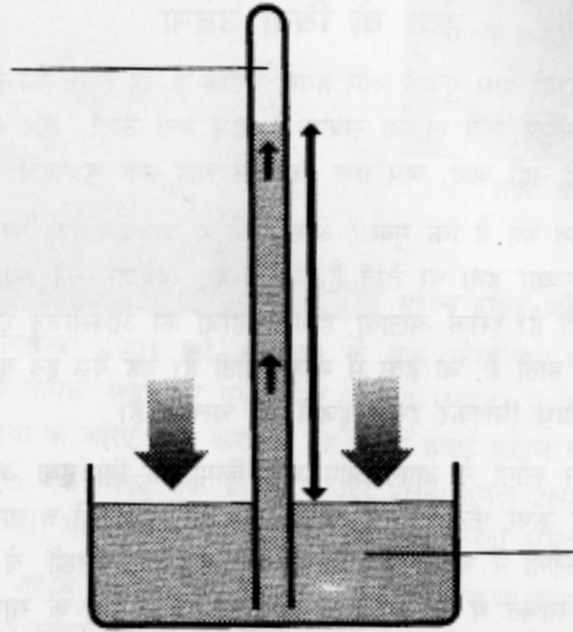
हवा के एक खम्भे की कल्पना करो। वह कितना लम्बा हो ताकि वह पारे के उतने ही चौड़े और 76 से.मी. खंभे के बराबर वजन रखता हो? पारा हवा से 10500 गुना ज्यादा भारी होता है। इसका मतलब हवा का खंभा भी पारे के खंभे से 10500 गुना ऊंचा होना चाहिए। इसका अर्थ है कि हवा या वायुमण्डल, जो अपने दबाव से 76 से.मी. पारे को उठाए रहता है, करीब 8 किलोमीटर (76 सेमी x 10500) ऊंचा है।

असल में वायुमंडल इससे ज्यादा ऊंचा होता है। धरती की सतह के पास वायु ऊपरी वायु के वजन के नीचे दबी होती है। इसलिए सतह के पास की हवा ऊपर की हवा से ज्यादा घनी होती है।

असल में तुम जितना ज्यादा ऊपर जाओगे, हवा कम घनी और पतली होती जाती है। जितनी वह कम घनी होती जाती है, वह फैलती जाती है। वायुमंडल धरती से 8 किलोमीटर से कहीं ज्यादा ऊपर तक फैला होता है, लगभग 16 किलोमीटर तक।

जैसे-जैसे हवा पतली होती जाती है, यह उतनी ही कम से कम उपयोगी होती जाती है। 10 किलोमीटर ऊपर हवा सांस लेने के लिए भी बहुत पतली है। 50 किलोमीटर ऊपर हवा एक गुब्बारे या वायुयान को सहारा देने के काबिल नहीं है। 160 किलोमीटर पर हवा इतनी कम हो जाती है कि उसका कठिनाई से ही पता चलेगा।

लेकिन अगर चांद पर जाने की बात करें, तो 160 किलोमीटर कुछ भी नहीं है। चांद पृथ्वी से 195000 किलोमीटर दूरी पर है। यानी लगभग सारे रास्ते, कोई भी हवा नहीं है। वह एक वैक्यूम (निर्वात) है, एक लैटिन शब्द, जिसका अर्थ है 'खाली'।

पूरे संसार में लगभग सभी जगह वैक्यूम है। तुम्हें किसी ग्रह के बहुत पास हवा मिल सकती है, पर अक्सर वह भी नहीं। उदाहरण के लिए चंद्रमा पर कोई हवा नहीं है।

जो वैक्यूम हमारे वायुमण्डल के आगे फैला है उसे हम 'बाहरी अंतरिक्ष' कह सकते हैं। इसलिए, हम यह भी कह सकते हैं कि टॉरिसेली ने बाहरी अंतरिक्ष की खोज की। वह पहला ऐसा व्यक्ति था जिसने यह दिखाया कि हवा ऊपर तक अन्तहीन नहीं होती, बल्कि यह केवल धरती की सतह के पास ही मौजूद होती है।

इसका अर्थ यह है कि कोई भी चंद्रमा तक हवा पर यात्रा नहीं कर सकता। अगर बड़ी बत्तखें एक रथ को खींच सकतीं तो भी वे एक वैक्यूम में नहीं उड़ सकती थीं। वे वैक्यूम में सांस भी नहीं ले सकती थीं। न ही लोग ऐसा कर सकते थे। कोई गुब्बारा वैक्यूम में ऊपर की ओर तैर नहीं सकता था। वैक्यूम में कोई वायुयान नहीं उड़ सकता था।

जब लोगों ने गुब्बारों, डिरिजिबिल, ग्लाइडर या वायुयान में उड़ना सीख लिया था, वे पृथ्वी से कुछ किलोमीटर से ज्यादा ऊपर नहीं उठ सकते थे।

तो फिर लोग चांद पर कैसे पहुंच सकते हैं? क्या कोई तरीका है जिससे कोई चीज वैक्यूम के जरिए चल सके?

एक तरीका है-ऊपर फेंकना। अगर तुम एक गेंद को हवा में फेंको तो यह ऊपर इसलिए उछलती है क्योंकि तुम इसे धक्का देते हो। इसका हवा से कोई सम्बन्ध नहीं है। बल्कि हवा तो उसे थोड़ा धीमा ही करती है।

बेशक गेंद ज्यादा ऊंचा नहीं जाती। धरती का गुरुत्व बल उसे पीछे खींचता रहता है और उसे धीमा करता जाता है। आखिरकार उसकी ऊपर की ओर गति कम होती-होती खत्म हो जाती है। एक क्षण के लिए गेंद हवा में स्थिर लटकी रहती है और फिर नीचे गिरने लगती है।

तुम गेंद को जितना ज्यादा जोर से फेंकोगे, वह शुरू में उतनी ही तेजी से चलेगी, उतना ही ज्यादा समय उसे धीमा होने में लगेगा और वह उतनी ही ज्यादा ऊंची जाएगी।

मानो कि तुम एक गेंद को बहुत ज्यादा जोर से ऊपर फेंको। क्या वह हमेशा आखिरकार नीचे आ ही जाएगी?

अगर पृथ्वी का खिंचाव ऊपर भी नीचे जितना बना रहे, तब तो गेंद हमेशा नीचे आ ही जाएगी, भले ही कितनी भी जोर से तुम उसे फेंको। परन्तु, सच तो यह है कि जैसे-जैसे ऊपर जाओगे, धरती का खिंचाव धीरे-धीरे कम होता जाता है। उदाहरण के लिए, धरती से 2,500 किलोमीटर की ऊंचाई पर यह खिंचाव केवल आधा रह जाता है।

ऐसे में, मान लो तुम गेंद को इतनी जोर से धकेलते हो कि जब तक वह आधी धीमे हो उसके पहले ही 2,500 किलोमीटर पहुंच चुकी हो। भले ही गेंद में गति आधी ही बची हो, धरती उसे अब आधे जोर से खींच रही है। आगे धरती का खिंचाव भी कमजोर से कमजोर होता जाएगा।

ऐसी स्थिति में गेंद हमेशा के लिए ऊपर की ओर चलती जाएगी। हालांकि वह धीमी होती जाएगी, कमजोर पड़ता खिंचाव उसे कभी भी

पूरी तरह रोक नहीं पाएगा और वह गेंद कभी वापस नहीं आएगी। ऐसी शुरुआती तेज गति, जो गेंद को धरती के आकर्षण को पार करा दे, पलायन गति (escape velocity) कहलाती है।

धरती पर, पलायन गति 11.2 किलोमीटर प्रति सेकेंड है। अगर कोई चीज इतनी या इससे ज्यादा गति से ऊपर फेंकी जाए, तो वह कभी वापस नहीं आएगी। यह हमेशा आगे चलती जाएगी, जब तक कि यह किसी से टकरा नहीं जाती । अगर इसे सही निशाना लगाकर फेंका जाए, तो यह तब तक ऊपर जाती रहेगी जब तक यह चंद्रमा से टकरा नहीं जाए।

तब फिर, यह रहा चंद्रमा तक पहुंचने का एक तरीका, कि किसी चीज को इतनी तेजी से फेंका जाए।

जाहिर है, कोई आदमी गेंद को इतनी जोर से नहीं फेंक सकता कि वह शुरू में ही 11.2 किलोमीटर प्रति सेकेंड की गति से चले। लेकिन कई चीजें ऐसी भी हैं जो इन्सान की मांसपेशियों से ज्यादा शक्तिशाली हैं। जैसे बारूद, धमाके के साथ तोप के गोले को तोप के मुंह से बहुत तेज धक्का दे सकती है, इन्सान से कहीं ज्यादा तेजी से। तो फिर क्या यह नहीं हो सकता कि एक अंतरिक्ष यान, जिसमें लोग बैठे हों, उसे चंद्रमा की ओर दाग दिया जाए?

1865 में फ्रांस के विज्ञान कथा लेखक जूल्स वर्ने ने एक उपन्यास लिखा- 'फ्रॉम द अर्थ टु द मून,' जिसमें आदमियों के एक समूह को एक विशाल तोप से दाग कर चंद्रमा की ओर फेंका जाता है।

यह सुनने में अच्छा लगता है, पर इसमें एक समस्या है, एक गंभीर समस्या।

चलो मानते हैं कि तोप में नीचे एक यान रखा है। बारूद फटता है और यान तोप के मुंह से कम से कम 11.2 किलोमीटर प्रति सेकेंड की गति से बाहर आता है। इसका मतलब कि यान इतनी गति कुल
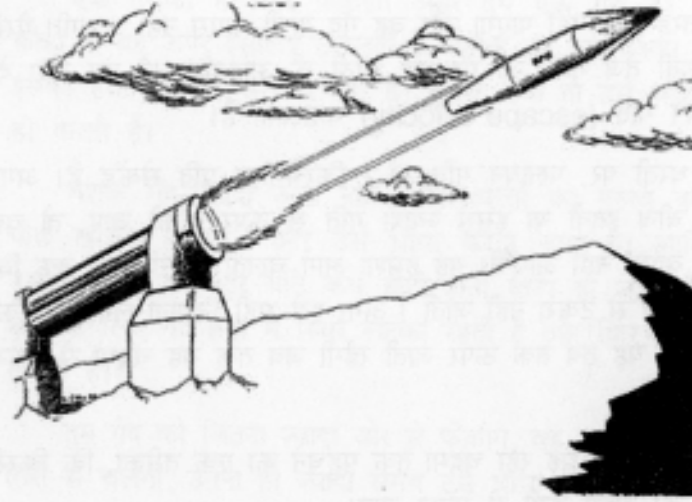
उतनी देर में ले लेता है जितना समय उसे तोप की नली को पार करने में लगता है। गति में बढ़ोतरी को त्वरण (acceleration) कहते हैं।

पर अगर तुम एक ऐसे यान में हो जिसकी गति बहुत तेजी से बढ़ रही है, तो यान तुम्हें आगे ले जाने के लिए तुम्हें भी धक्का देगा। तुम्हें ऐसा महसूस होगा जैसे कि तुम खुद उसको पीछे धकेल रहे हो। ऐसा एक कार में महसूस हो सकता है जब वह अपनी स्पीड बढ़ा रही हो।

जितना ज्यादा त्वरण होगा, उतना ही ज्यादा तुम सीट की ओर या नीचे धकेले जाओगे। अगर यान को तोप से दागा जाए ताकि वह पलायन गति को कुछ क्षणों में हासिल कर ले, तो धक्का इतना ज्यादा होगा कि तुम्हारा शरीर कुचल जाएगा और तुम मारे जाओगे।

जैसा जूल्स वर्ने ने दिखाया था, अगर उस तरह यान एक तोप से दागा जाए तो उसमें बैठे सब लोग फौरन मर जाएंगे। लेकिन तब भी हमें वह गति प्राप्त करनी ही है। तो फिर, तरकीब यह है कि गति बढ़ानी है, लेकिन धीरे-धीरे। कैसे?

इस सवाल के जवाब की शुरुआत मिली एक अंग्रेज वैज्ञानिक आइजैक न्यूटन से।

रॉकेट

1687 में न्यूटन ने एक किताब लिखी, जिसमें उसने यह बताया कि गुरुत्वाकर्षण कैसे काम करता है। साथ ही उसने गति के तीन सिद्धांत बताए। इनमें से तीसरा सिद्धान्त है: एक दिशा में होने वाली किसी भी क्रिया के लिए, उसकी विपरीत दिशा में बराबर की प्रतिक्रिया होती है।

मान लो तुम एक चिकनी, बड़ी-सी एल्यूमिनियम की नाव पर बैठे हो जो बहुत बड़ी और फिसलनी बर्फ की चादर पर रखी है। नाव में तुम्हारे पास ढेर सारी भारी धातु की गेंदें हैं। तुमने एक गेंद उठाई और एक ओर फेंक दी। यह क्रिया है।

जैसे ही तुम गेंद को फेंकते हो, नाव बर्फ के ऊपर फिसलना शुरू कर देती है, गेंद फेंकने की उल्टी दिशा में। यह प्रतिक्रिया है। नाव गेंद जितनी तेज गति से नहीं चलती, क्योंकि नाव ज्यादा भारी है। नाव का वजन x गति उतना ही है जितना गेंद का वजन x गति, यानी क्रिया और प्रतिक्रिया बराबर है।

अगर तुम पहली वाली गेंद की दिशा में ही एक और गेंद फेंको, नाव को एक और धक्का लगता है और वह और तेज चलने लगती है।

अगर तुम गेंद पर गेंद एक ही दिशा में फेंकते रहे, नाव तेज और तेज फिसलती जाती है। इस प्रकार नाव की गति को बहुत ज्यादा बढ़ाया जा सकता है। अगर तुम्हारे पास काफी गेंदें और ताकत हो, और बर्फ की जमीन बहुत बड़ी और फिसलनी हो, तो तुम आखिरकार नाव को 11.2 किलोमीटर प्रति सेकेंड की गति तक ले जा सकते हो। (तुम्हें याद है न, पहले हमने पलायन गति की बात की थी-यानी वह गति जो पृथ्वी के गुरुत्व बल के खिंचाव को पार करने के लिए जरूरी है, कम से कम 11.2 किलोमीटर/सेकेंड)। ऐसे में गति थोड़ा-थोड़ा करके बढ़ेगी और तुम्हें नुकसान नहीं पहुंचाएगी।

इसका हवा से कोई लेना-देना नहीं है। अगर रास्ते में हवा न हो

तो नाव और ज्यादा तेजी से चलेगी। अगर नाव अंतरिक्ष में हो, जहां केवल निर्वात (Vaccum) है, तो क्रिया-प्रतिक्रिया और भी ज्यादा अच्छी तरह काम करेंगे, धरती से भी ज्यादा।

1891 में एक जर्मन आविष्कारक हर्मन गैन्सविंड ने एक ऐसा अंतरिक्ष यान सुझाया जो पीछे से तोप के गोले फेंककर आगे बढ़ेगा। इस यान पर त्वरण (acceleration) धीरे-धीरे बढ़ेगा, इसलिए यान में बैठे किसी को नुकसान नहीं पहुंचाएगा। हमें हर गेंद फेंकने के साथ केवल एक छोटा झटका लगेगा।

इस तरह तोप के गोले फेंकना जूल्स वर्ने के विचार से कहीं बेहतर था (जिसमें यान को ही तोप से फेंका जाना था), लेकिन तभी जब यान पहले ही अंतरिक्ष में पहुंच चुका हो। धरती की सतह से यान को बाहरी अंतरिक्ष में भेजना एक अलग मसला है। गैन्सविंड का तरीका उसके लिए व्यावहारिक नहीं है।

मान लो, एक यान धरती की सतह पर हो और उससे गोला दागा जाए। जैसे ही यान चालू होगा, धरती का खिंचाव उसे धीमा करने लगेगा। इसलिए अगले गोले को लगभग तुरन्त ही दागना पड़ेगा ताकि यान की गति कम न हो। गोलों को इतनी तेजी से दागना पड़ेगा कि इसके लिए ऐसी तोपों का इन्तजाम करना मुश्किल है जो इन्हें आवश्यक तेजी से दाग सकें ।

मान लो, इसकी बजाय हम कोई ऐसा तरीका निकालें कि कोई चीज एक दिशा में लगातार लम्बे समय तक छोड़ी जा सके। इस प्रकार यान उल्टी दिशा में धीमा, स्थिर त्वरण से बढ़ता रहेगा।

असल में इसको करने का सही तरीका गैन्सविंड के समय में पता था, जूल्स वर्ने के समय में भी पता था, बल्कि उनसे कई सदियों पहले पता था। सही तरीका है - रॉकेट का इस्तेमाल करना।

मान लो, तुम्हारे पास एक गत्ते की नली है जो एक ओर से बंद है। तुम इसमें बारूद भर दो। फिर इसके खुले सिरे को हल्के से बंद

कर दो और इसके जरिए एक डोरी (पलीता) गुजरने दो। डोरी का एक सिरा बारूद में है और दूसरा बाहर खुला है जहां तुम उसे सुलगा सकते हो। यह नली एक लम्बी-पतली छड़ी के साथ जुड़ी है जो इसे सीधे जाने में मदद करेगी। यह एक रॉकेट है, जैसा हम दीवाली के पटाखों में भी छुड़ाते हैं।

अब पलीते में आग लगा दो। जब यह जल जाएगा, आग बारूद को छू लेगी। यह बहुत तेजी से जलने लगेगा और भारी मात्रा में गैसें बनने लगेंगी। अगर गत्ते की नली कसकर बंद हो तो गैसें फैलकर धमाका करके उसे फाड़ देंगी। लेकिन क्योंकि एक सिरा ढीला बंद है, गैसें उससे तेज आवाज के साथ बाहर आती हैं और रॉकेट दूसरी दिशा में बढ़ जाता है। जैसे-जैसे गैस की यह धार बाहर आती जाती है, रॉकेट तेज और तेज होता जाता है और अपनी चरम गति पर तब पहुंचता है जब बारूद पूरा जल चुका होता है। बाद में, वह धीमे होकर आखिरकार जमीन पर गिर जाता है।

बारूद का आविष्कार चीनियों ने किया था। 12वीं सदी में चीनी रॉकेट और दूसरे पटाखे केवल धमाकों और रोशनी के मजे लेने के लिए बनाते थे। वे युद्ध में रॉकेट का इस्तेमाल शत्रु को डराने के लिए भी करते थे।

12वीं सदी में ही बारूद और रॉकेट का ज्ञान पश्चिम में यूरोप तक पहुंचा। यूरोपीय देश बारूद को तोपों में इस्तेमाल करते थे, लेकिन रॉकेट का प्रयोग केवल मजे लेने के लिए करते थे।

1780 में अंग्रेज भारत में भारतीय सेनाओं से लड़ रहे थे। भारतीय उस समय रॉकेट का इस्तेमाल करके अंग्रेजी सेना पर पत्थर बरसा रहे थे। विलियम कौनग्रेव नाम के अंग्रेज ने, जो तोपें संभालता था, इस बात को देखा। उसने यह भी सोचा कि अगर रॉकेट को बेहतर बनाया जाए तो उन्हें और ज्यादा दूर तक फेंक कर तोपों के गोलों से ज्यादा मारक बनाया जा सकता है।

उसने बेहतर रॉकेट बनाए और 18वीं सदी की शुरुआत में अंग्रेज जल व थल सेना ने इन्हें अपने दुश्मनों के खिलाफ इस्तेमाल किया। लेकिन रॉकेट बहुत लम्बे समय तक इस्तेमाल नहीं हुए, क्योंकि तोपें और बेहतर होती गई और जल्दी ही उनसे रॉकेटों के मुकाबले कहीं ज्यादा भारी गोले ज्यादा तेज और दूर फेंके जाने लगे।

ऐसा भी नहीं कि रॉकेटों को फिर इस्तेमाल ही नहीं किया गया। दूसरे विश्व युद्ध में, 1940 के आसपास रॉकेटों का फिर इस्तेमाल हुआ। सैनिक बजूका
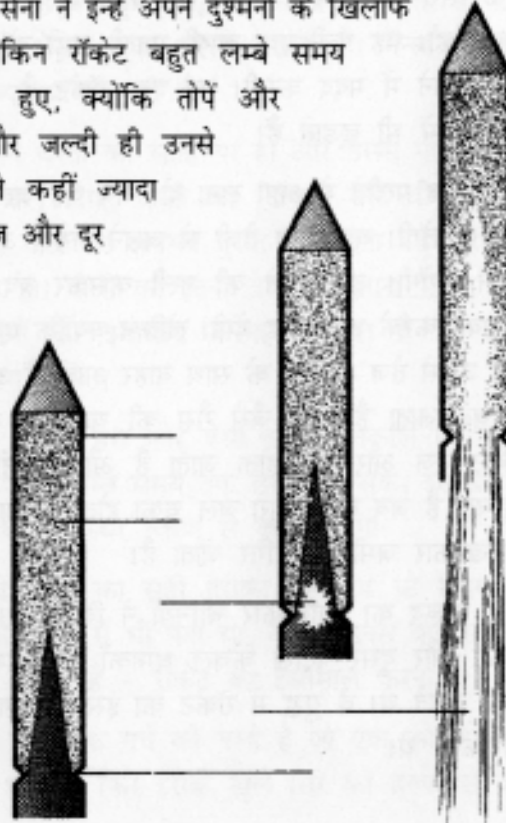
नाम की नलियां लिए रहते थे, जिनसे वे टैंकों के ऊपर रॉकेट छोड़ते थे।

साथ ही दूसरे विश्वयुद्ध में ऐसे हवाई जहाज बने जो रॉकेट के सिद्धान्त का इस्तेमाल करते थे। जहाज के पीछे से गैस एक बड़ी धार (jet) के रूप में आती थी, जिससे जहाज तेज और तेज चलता जाता था। ऐसे जेट वायुयान (jet aircraft) 1952 में शांतिपूर्ण कार्यों के लिए भी इस्तेमाल होने लगे। आज पूरी दुनिया में लोग जेट प्लेनों में यात्रा करते हैं। (क्या तुमने देखा है? ये आकाश में अपने पीछे एक लम्बी सफेद धारी छोड़ते हुए जाते हैं।)

जेट वायुयान

पहली बार यह विचार 1650 में सुझाया गया – न्यूटन के क्रिया-प्रतिक्रिया बताने से भी 40 साल पहले। जिस आदमी ने यह सुझाया वह एक फ्रांसीसी विज्ञान-कथा लेखक था- साइरानो डी बरजरैक।

उसने एक किताब लिखी 'चंद्रमा तक यात्रा' (voyage to the moon)। इसमें उसने चंद्रमा तक पहुंचने के 7 अलग-अलग तरीके बताए। उनमें से छह तरीके तो असल में सम्भव नहीं थे, पर सातवां रॉकेट की मदद से था। (साइरानो की बड़ी-सी नाक थी और जो भी

उसकी नाक का मजाक बनाता, वह उनसे भिड़ जाता था। उसके बारे में एक प्रसिद्ध नाटक भी है। इसलिए लोग उसे उसकी नाक और लड़ाइयों के लिए ज्यादा जानते हैं, बजाय इसके कि वह एक विज्ञान कथा लेखक था।)

इसके बाद करीब 250 साल बीत गए जब तक किसी वैज्ञानिक ने रॉकेट के जरिए अंतरिक्ष में यात्रा करने की बात की। जिसने यह बात की, वह एक रूसी था – कांल्सटान्टिन ई. सियोल्कोव्सकी। वह 1857 में पैदा हुआ था। जब वह केवल 9 साल का था कान में रोग लग जाने से वह लगभग पूरा बहरा हो गया था और उन दिनों के रूस में उसके लिए शिक्षा पाने के खास मौके नहीं थे।

लेकिन उसे जो भी सीखना था उसने किताबों के जरिए सीख लिया और उसने कई बड़े मौलिक विचार सुझाए।

1895 में उसने अंतरिक्ष यानों के बारे में लिखना शुरू किया। साइरानो की तरह उसने भी सोचा कि अंतरिक्ष यान रॉकेट से चल सकते हैं। सियोल्कोव्सकी ने रॉकेट में बारूद के इस्तेमाल की बात नहीं सोची, बल्कि उसने तरल ईंधन (liquid fuel) की बात की – जैसे पैराफिन तेल। ऐसा द्रव ईंधन बारूद के मुकाबले कहीं ज्यादा आसानी से नियन्त्रित किया जा सकता है। उसे जल्दी या धीमा जलाया जा सकता है – उस जगह कम या ज्यादा भेजकर, जहां उसे जलाना है।

आज हम अपने ज्यादातर वाहनों में तरल ईंधन इस्तेमाल करते हैं। लेकिन जलने के लिए पेट्रोल को हवा की ऑक्सीजन से मिलाना पड़ता है– जो आसान है, जब चारों ओर हवा हो।

लेकिन यह अलग है जब हम अंतिरक्ष के वैक्यूम से गुजर रहे हैं। चारों ओर कोई हवा नहीं है और वैक्यूम के जरिए यात्रा करने के लिए रॉकेट को अपनी खुद की ऑक्सीजन रखनी पड़ती है– ठंडी करके, तरल में बदलकर, ताकि ज्यादा ऑक्सीजन कम जगह में भरी जा सके।

सियोल्कोव्सकी यह समझता था और 1903 में उसने रॉकेट के बारे में विस्तार से लिखा। उसने केवल तरल ईंधन, तरल ऑक्सीजन की ही बात नहीं की, बल्कि अंतरिक्ष पोशाक, अंतरिक्ष बस्ती आदि के बारे में भी बात की। बाद में उसने एक विज्ञान उपन्यास लिखा– पृथ्वी के बाहर (आउटसाइड द अर्थ)। यद्यपि सियोल्कोव्सकी ने बहुत कुछ तरीका निकाल लिया था जिससे राकेट चल सकते थे, उसने उन्हें खुद बनाने की कोशिश नहीं की। 1935 में उसकी मृत्यु हो गई। हालांकि सोवियत संघ में उसका बड़ा आदर था, पर उस देश के बाहर शायद ही किसी ने उसका नाम सुना था।

ऊंचे और ऊंचे रॉकेट

तुमने पढ़ा कि तरल ईंधन से चलने वाले रॉकेटों के निर्माण की बात सोच ली गई थी। लेकिन पहला आदमी, जिसने ऐसा रॉकेट सचमुच बनाया वह एक अमरीकी वैज्ञानिक था। उसका नाम था गौडर्ड। वह 1882 में पैदा हुआ था। अपने लड़कपन में उसे विज्ञान की कल्पना-कथाओं में रुचि थी और उसने एच.जी. वेल्स की 'द वॉर ऑफ द वर्ल्ड्स' पढ़ी। इसमें पृथ्वी के ऊपर मंगल ग्रह के बुद्धिमान प्राणियों द्वारा हमले को दर्शाया गया था।

ऐसी कथा पढ़कर गौडर्ड को कई नए विचार सूझे। जब वह कॉलेज में था, उसने एक लेख लिखा– 1950 में यात्रा। उसने ऐसी ट्रेनों के बारे में लिखा जिन्हें चुम्बकों द्वारा खींचा जाता था और वे ऐसी सुरंगों से जाती थीं, जिनमें से सारी हवा निकाल दी गई थी। उसने कल्पना की कि ये ट्रेनें बोस्टन से न्यूयार्क (अमरीका में दो शहर) कुल 10 मिनट में ले जाएंगी। (दुर्भाग्य से, 1950 आने पर भी ऐसी ट्रेनें नहीं बनी थीं, और इस यात्रा में 4 घण्टे लगते थे।)

फिर गौडर्ड की रॉकेटों में रुचि बढ़ने लगी। 1914 तक उसने ...टों से सम्बन्धित दो खोजों के पेटेंट करवा लिए थे। 1919 में उसने

एक किताब लिखी जिसमें उसने रॉकेटों का वर्णन किया और यह भी कि उनसे कैसे चंद्रमा तक पहुंचा जा सकता था। उसके विचार काफी कुछ वैसे ही थे जैसे सियोल्कोव्सकी के रहे थे।

गौडर्ड ने फिर ऐसे रॉकेट बनाए जो पेट्रोल और तरल ऑक्सीजन का इस्तेमाल करते थे। मार्च 1926 को अपनी आंटी के खेत में वह पहला ऐसा रॉकेट उड़ाने के लिए तैयार था। उसकी पत्नी ने उसकी और उसके रॉकेट की फोटो ली। यह ठंडा दिन था और जमीन पर बर्फ पड़ी थी। गौडर्ड ओवरकोट और जूते पहने हुए एक ढांचे जैसे के

पास खड़ा था। इसमें ऊपर एक छोटा-सा रॉकेट था – 120 से.मी. लम्बा और 15 से.मी. मोटा।

आसपास देखने वाला कोई रिपोर्टर नहीं था। असल में, देखने

वाला कोई नहीं था, क्योंकि किसी को परवाह नहीं थी। लेकिन तब भी गौडर्ड 'अन्तरिक्ष यात्रा का कोलम्बस' (पहला यात्री) था। वह ऐसा पहला रॉकेट छोड़ने जा रहा था जो आखिरकार अन्तरिक्ष में पहुंचे।

गौडर्ड ने पलीते को सुलगाया और रॉकेट 56 मीटर हवा में उड़ा और 96.5 किलोमीटर प्रति घण्टे की गति तक पहुंचा। यह गति कुछ ज्यादा नहीं थी, पर इसने दिखाया कि गौडर्ड के रॉकेट का इंजन काम करता था। अब उसे बड़े रॉकेट बनाने थे।

गौडर्ड को कुछ पैसा मिला और जुलाई 1929 में उसने वॉरसेस्टर में एक ज्यादा बड़ा रॉकेट भेजा। वह पहले से ज्यादा ऊंचा और तेज गया। उसमें एक बैरोमीटर, थर्मामीटर और एक छोटा कैमरा भी था। यह पहला रॉकेट था जो ऐसे यन्त्र भी ऊपर ले गया जो यह पता लगा सकते थे कि वायुमंडल या अंतरिक्ष ऊपर से कैसा है।

लेकिन गौडर्ड मुसीबत में था। लोग उसे पागल समझते थे और उसके ऐसा सोचने पर कि इंसान चंद्रमा तक पहुंच सकता है, हंसते थे। न्यूयार्क टाइम्स नाम के अखबार ने लिखा कि गौडर्ड मूर्ख है। उसके रॉकेट अंतरिक्ष में तो काम करेंगे नहीं, क्योंकि वहां हवा नहीं होगी। लेकिन इस लेख से यही दिखता है कि लिखने वाले की समझ बहुत कम थी और उसे क्रिया-प्रतिक्रिया का कोई ज्ञान न था।

फिर गौडर्ड के एक रॉकेट ने छूटते वक्त बड़ा धमाका किया। उसके पड़ोसियों ने पुलिस और फायर ब्रिगेड को बुला लिया और गौडर्ड को आदेश दिया गया कि वह अपने सारे प्रयोग बंद कर दे।

किस्मत से उड़न-वैज्ञानिक चार्ल्स लिंडबर्ग ने इन प्रयोगों के बारे में सुना और अपने प्रभाव का इस्तेमाल कर गौडर्ड को धन दिलवाया। उस धन से गौडर्ड ने न्यू मेक्सिको में अपने लिए एक जगह बनवाई जहां वह अपने प्रयोग कर सकता था। वह एक सुनसान जगह थी जहां उसके रॉकेटों का शोर किसी को तंग नहीं करता था। यहां उसने और बड़े रॉकेट बनाए और लगभग वे सभी खोजें कीं जो आने वाले समय
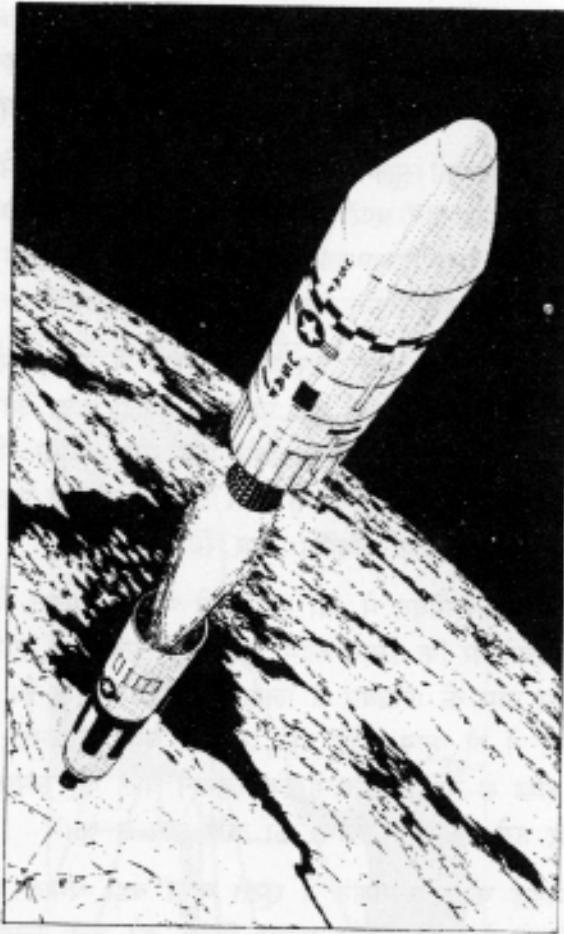
में रॉकेटों में काम आने वाली थीं।

जैसे, उसने एक से ज्यादा चरण वाले रॉकेटों की खोज की। ऐसे रॉकेट का निचला हिस्सा (पहला चरण) ईंधन और ऑक्सीजन से भरा होता है, जो जलकर रॉकेट को हवा में ऊंचा उठाता है। जब यह पूरा जल जाता है, उसके ऊपर का दूसरा चरण अपने अंदर की ऑक्सीजन और ईंधन को जलाने लगता है।

जलता हुआ दूसरा चरण रॉकेट को और ऊंचा और ज्यादा तेज ले

जाता है, क्योंकि अब पहले वाला भारी चरण उसे रोक नहीं रहा। जब दूसरा चरण खत्म हो जाता है, वह भी गिर जाता है। और तीसरा चरण चालू हो जाता है। इस तरह से केवल एक बड़े रॉकेट की बजाय कई चरण वाला रॉकेट ज्यादा से ज्यादा ऊंचा और तेज होता चला जाता है।

गौडर्ड ने अपना काम खत्म करने से पहले 214 पेटेंट अपनी रॉकेट-सम्बन्धी खोजों के लिए करा लिए थे। 1930 और 1935 के बीच उसने 885 किमी/प्रति घण्टा की गतिवाले और 2.4 किलोमीटर ऊपर तक जाने वाले रॉकेट बना लिए थे।

हालांकि, ज्यादातर समय गौडर्ड के काम में दूसरों की रुचि लगभग नहीं के बराबर रही। शायद किसी को पता भी नहीं था कि ऐसा कोई काम चल रहा है। अमरीकी सरकार ने तो उसे प्रोत्साहित करने के लिए कुछ नहीं किया।

लेकिन जर्मनी में स्थिति अलग थी। वहां पर रॉकेट में रुचि पैदा हुई 1923 में हरमन ओबर्थ की लिखी किताब से। उसके विचार इसके पहले सियोल्कोव्सकी तथा गौडर्ड की बातों से मिलते-जुलते थे।

1927 में जर्मनी में 'अंतरिक्ष यात्रा समिति' चालू हुई। उसके सबसे शुरुआती सदस्यों में एक युवक बिली ले था, जिसने एक और युवक वर्नर वॉन ब्रॉन का परिचय समिति से करवाया।

इस समिति ने 85 तरल ईंधन के रॉकेट बनाए और चलाए। उनमें से एक 1.5 किलोमीटर ऊंचा गया। हालांकि इस समिति ने उतने अच्छे परिणाम नहीं हासिल किए जितने अकेले गौडर्ड ने खुद किए, फिर भी समिति को महत्वपूर्ण सहायता मिलनी चालू हो गई।

1933 में हिटलर जर्मनी का शासक बना। वह एक क्रूर और निर्दयी आदमी था। वह जर्मनी को बहुत शक्तिशाली बनाना चाहता था ताकि वह ज्यादा से ज्यादा पड़ोसी देशों पर हमला करके उनपर कब्जा जमा सके। उसने देखा कि रॉकेट अच्छे युद्ध के हथियार बन सकते थे, इसलिए उसने समिति के काम को समर्थन दिया।

बिली ले हिटलर की सोच से नफरत से भर गया और उसने तुरन्त जर्मनी छोड़ दी। वर्नर वॉन ब्रॉन, हालांकि पीछे रुक गया और उसने हिटलर के लिए रॉकेट पर काम करना चालू कर दिया।

1936 में बाल्टिक सागर के तट पर उत्तर पूर्व जर्मनी में एक गुप्त जगह बनाई गई जहां रॉकेट के प्रयोग हो सकें। बहुत से सरकारी धन से ब्रॉन आगे बढ़ने लगा। 1938 तक वह 17 किलोमीटर उड़ने वाले रॉकेट बनाने लगा था।

अगले साल यूरोप में द्वितीय विश्व युद्ध चालू हो गया था और यह हिटलर का विचार था कि ब्रॉन मिसाइल बनाए, यानी ऐसे रॉकेट जो विस्फोटकों को सैंकड़ों किलोमीटर दूर, शत्रु के इलाके में सही निशाने पर ले जा सकें। वे इतना तेज चलेंगे कि एंटी-एयरक्राफ्ट गन (विमानों को उड़ाने वाली तोपें) उन्हें उड़ा नहीं सकेंगी।

ऐसा पहला शस्त्र एक स्वचालित यान था जिसका नाम V-1 था। V अक्षर था Vergeltung के लिए। यह जर्मन शब्द है, जिसका अर्थ है- बदला। 1944 तक ब्रॉन ने और भी बेहतर मिसाइल बना लिया था। यह एक असली रॉकेट था, जो ध्वनि से भी तेज गति से चलता था । यह था V-2 रॉकेट।

कुल मिलाकर 4300 V-2 रॉकेट जर्मनों द्वारा छोड़े गए, जिसमें से 1230 ने लंदन शहर पर मार की। इन मिसाइलों ने 2,511 अंग्रेज लोगों को मारा और 5869 दूसरों को गंभीर रूप से घायल किया। दुनिया की किस्मत से, V-2 रॉकेट हिटलर को बचाने के लिए बहुत देर से आए। जब ये रॉकेट उड़ना शुरू हुए तब वह पहले ही युद्ध हारने लग गया था और ये उन सेनाओं को भगाने के लिए काफी नहीं थे जो उसे चारों ओर से घेर चुकी थीं। 8 मई, 1945 को जर्मनी ने आत्मसमर्पण कर दिया।

गौडर्ड ने इतना जीवन पाया कि वह V-2 रॉकेटों को चलते हुए देख सके। वह 10 अगस्त 1945 को मरा।

V- 2 रॉकेट

एक चीज जो V-2 रॉकेटों ने की वह यह कि अमरीका और सोवियत संघ दोनों की रॉकेट में रुचि पैदा कर दी। आखिरकार ये दोनों देश एक-दूसरे से डरते थे और जितने ज्यादा हो सकें, हथियार जुटाना चाहते थे। हर देश ने इसलिए जर्मनी के रॉकेट विशेषज्ञों को पकड़ने की कोशिश की, जब उनकी सेनाएं जर्मनी में घुसीं। अमरीका ने वान ब्रॉन को ही पकड़ लिया।

दोनों देशों ने फिर ज्यादा बड़े और बेहतर मिसाइल बनाने के लिए कड़ी मेहनत की। 1950 तक पुराने V-2 नए बनने वाले राक्षसी मिसाइलों के सामने केवल खिलौने रह गए थे। आखिरकार अमरीका और सोवियत रूस दोनों के पास ऐसी मिसाइलें थीं जो पृथ्वी की किसी भी जगह पर मार कर सकती थीं। यही नहीं, ये मिसाइलें केवल V-2 की तरह साधारण विस्फोटक ही नहीं ले जा सकती थीं, बल्कि ये एटम बम ले जाने वाली थीं।

दोनों देशों के पास अब ऐसे हथियार थे जो इन दोनों का खात्मा कर सकते थे और शायद बाकी पूरे विश्व का भी। अवश्य ही ऐसा

कुछ सियोल्कोव्सकी या गौडर्ड के दिमाग में नहीं रहा था। उन्हें तो बाहरी अन्तरिक्ष की खोज के लिए रॉकेट चाहिए थे।

ऐसा हो भी रहा था। जब अमरीका ने जर्मनी पर हमला किया था, उसने बहुत से V-2 रॉकेट पकड़े थे, जिसका उन्होंने वैज्ञानिक उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल किया। उन्होंने इन्हें शहरों को मिटाने के लिए नहीं छोड़ा, बल्कि सीधे ऊपर हवा में छोड़ा। ये V-2 बम लेकर नहीं गए बल्कि ऐसे यन्त्र लेकर गए जो ऊपरी वायुमंडल की विशेषताओं का पता लगा सकें। इनमें से एक V-2 183.4 किलोमीटर की ऊंचाई तक पहुंचा, किसी भी गुब्बारे या वायुयान से चौगुना ऊंचा।

1949 में अमरीका ने एक V-2 के ऊपर एक और अमरीकी रॉकेट जोड़ दिया। जब V-2 अपनी अन्तिम ऊंचाई तक पहुंचा, छोटा रॉकेट ऊपर उड़कर 386 किलोमीटर ऊंचा पहुंच गया। जब 160 किलोमीटर से ज्यादा की ऊंचाई हासिल हो जाए, तो रॉकेट असल में बाहरी अंतरिक्ष में ही पहुंच चुके होते हैं।

तब भी, कोई भी रॉकेट जो तेजी से हवा को चीरता हुआ ऊंचा चला जाता है और फिर पृथ्वी के गुरुत्व द्वारा नीचे खींच लिया जाता है, बाहरी अंतरिक्ष में केवल कुछ मिनटों तक ही रह पाता है। बाहरी अंतरिक्ष की खासियत बारीकी से पता लगाने के लिए समय ही काफी नहीं होता।

क्या कोई तरीका है जिससे रॉकेट को बाहरी अंतरिक्ष में देर तक रखा जा सके, उसके धरती पर वापस गिरे बिना?

हां, है, और 1950 के दशक में अमरीका और सोवियत संघ दोनों ने ही इसके बारे में सोचना शुरू कर दिया था।

उपग्रह और अंतरिक्ष

मान लो कि कोई रॉकेट 160 किलोमीटर ऊपर की ओर दागा जाता है और फिर उसका रास्ता मोड़ दिया जाता है जिससे वह पृथ्वी की सतह के समानान्तर चले। रॉकेट नीचे की ओर गिरना चालू करेगा, लेकिन पृथ्वी की सतह गोल है और रॉकेट से गोलाई में परे हटती जाएगी।

अगर कोई रॉकेट काफी तेज गति से चले, और नीचे उतनी ही गति से गिरे जितनी गति से धरती की सतह उससे परे हटती जा रही है। ऐसे में रॉकेट जमीन तक नहीं पहुंचेगा। वह सिर्फ धरती के चारों ओर गोल घूमता रहेगा। हम कहेंगे कि वह पृथ्वी की कक्षा में है।

ऐसे रॉकेट को सैटेलाइट या उपग्रह कहते हैं। चंद्रमा पृथ्वी का कुदरती उपग्रह है। कक्षा में घूमता एक रॉकेट एक मानव निर्मित उपग्रह है।

करीब 300 साल पहले आइजैक न्यूटन ने दिखाया कि कृत्रिम उपग्रह संभव है। उसे कक्षा में डालना केवल गति का मामला है। अगर किसी सैटेलाइट को पृथ्वी के 160 किलोमीटर ऊपर चक्कर काटना है तो उसे कम से कम 8 किलोमीटर प्रति सेकेंड की गति से चलना होगा।

1950 तक अमरीका और सोवियत संघ दोनों के पास ही इतने शक्तिशाली रॉकेट थे जो ऐसी गति प्राप्त कर सकें। 1955 में अमरीका ने घोषणा की कि वह सैटेलाइट को कक्षा में डालने की कोशिश करेगा। सोवियत संघ ने भी घोषणा की कि वह भी ऐसा ही करेगा। ज्यादातर अमरीकी लोगों को पक्का विश्वास था कि पहले वही ऐसा कर पाएंगे, पर उन्हें हैरानी हुई। 4 अक्तूबर 1957 को सोवियत संघ ने दुनिया का पहला मानव निर्मित सैटेलाइट कक्षा में छोड़ा। इसका नाम स्पुतनिक था। 4 अक्तूबर 1957 को अकसर 'अंतरिक्ष युग' की शुरुआत माना जाता है।
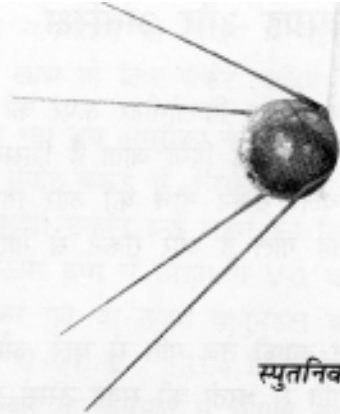
स्पुतनिक

अमरीका जल्दी ही अपने सैटेलाइट छोड़ने लगा था। 31 जनवरी 1958 को वॉन ब्रॉन ने पहला अमरीकी सैटेलाइट छोड़ा। इसके आगे के सालों में दोनों देशों ने सैंकड़ों सैटेलाइट कक्षा में स्थापित किए।

ये उपग्रह पृथ्वी की स्थिति का जायजा लेते हैं। कुछ बाहरी अंतरिक्ष से पृथ्वी के फोटो खींचते हैं। इससे वैज्ञानिक बादलों की बनावट देखकर मौसम को ज्यादा बेहतर समझ सकते हैं। चक्रवात (hurricane) शुरू से ही देखे जा सकते हैं और उनका पीछा किया जा सकता है।

ऐसे सैटेलाइट होते हैं जो धरती के एक स्थान से संदेश पकड़कर उन्हें दूसरे स्थान तक पहुंचा सकते हैं। इस प्रकार यह संभव हो सका है कि पृथ्वी की किसी भी जगह के लोग किसी दूसरी जगह को टीवी पर देख सकते हैं।

जिस तरह सैटेलाइट कक्षा में चलते हैं उससे धरती के गुरुत्व बल का अलग-अलग जगह जायजा लिया जा सकता है। पृथ्वी का सही आकार इस तरह पता लगता है। धरती के इस तरह कहीं ज्यादा सटीक नक्शे बनाए जा सकते हैं।

कुछ उपग्रह बाहरी वायुमण्डल में आने वाली उन किरणों का अध्ययन करते हैं, जो पृथ्वी के वायुमण्डल से नहीं गुजर सकतीं।
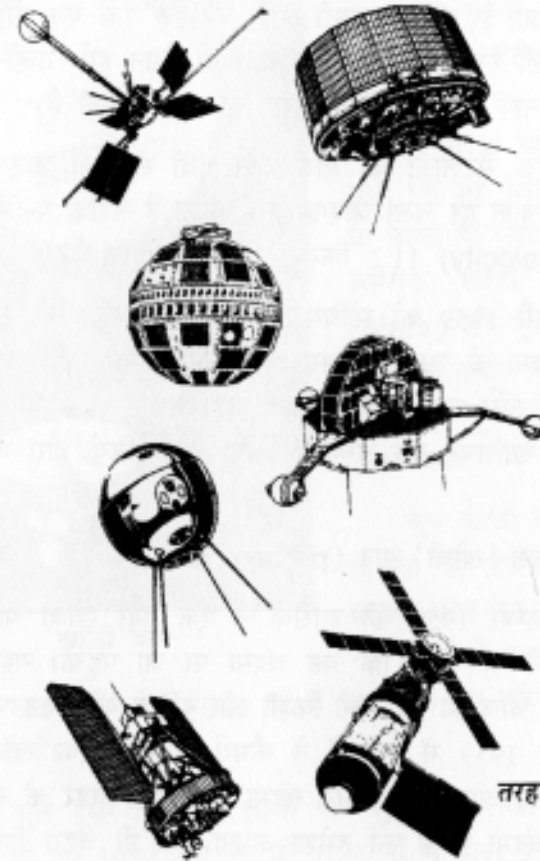
तरह-तरह के उपग्रह

सैटेलाइट उन्हें हवा तक पहुंचने से पहले ही पढ़ लेते हैं। वे सूर्य से और आकाश के दूसरे हिस्सों से आने वाली किरणों का अध्ययन करते हैं। इससे अंतरिक्ष के बारे में बहुत सारी जानकारी इकट्ठी हुई है और वैज्ञानिक विश्व के बारे में जितना जान सके हैं, वह इन उपग्रहों के बिना संभव ही नहीं था।

उदाहरण के लिए, कुछ सैटेलाइटों ने वायुमण्डल के ऊपर आवेशित परमाणु कणों का अध्ययन किया। उन्हें पृथ्वी के चारों ओर इनकी विशाल पट्टियां मिलीं। ये पट्टियां जिन्हें वान ऐलियन रेडिएशन

बेल्ट कहा जाता है, सूर्य के दूसरी ओर धरती के पीछे एक लम्बी पूंछ की तरह फैली रहती हैं। वैज्ञानिक बहुत ही हैरान हुए। उन्होंने कभी अन्दाजा भी नहीं लगाया था कि ऐसी चीज हो सकती है।

अगर एक सैटेलाइट को थोड़ी और तेजी से भेजा जाए तो वह पृथ्वी से बिल्कुल दूर चला जाएगा। तुम्हें ध्यान है न कि पलायन गति (escape velocity) 11.2 किलोमीटर प्रति सेकेंड है?

2 जनवरी 1959 को सोवियत संघ ने एक बहुत तेज सैटेलाइट छोड़ा जो चंद्रमा के पास से गुजरा और कभी वापस नहीं आया। वह सूर्य के चारों ओर चक्कर काटता रह गया। उसने चंद्रमा के पास के अंतरिक्ष की खासियत का अध्ययन किया और रेडियो द्वारा जानकारी भेजी।

यह पहला 'खोजी' यान (probe) था।

12 सितम्बर 1959 को रूसियों ने एक और खोजी यान इतने बढ़िया निशाने पर साधा कि वह चंद्रमा पर जा पहुंचा। यह पहली मानव निर्मित चीज थी जो कभी किसी और दुनिया की सतह पर उतरी थी। अक्तूबर 1959 में रूसियों ने कैमरों से लैस एक खोजी यान चंद्रमा के चारों ओर भेजा। उसने चंद्रमा के पिछले चेहरे के सर्वप्रथम चित्र भेजे। चंद्रमा पृथ्वी को हमेशा अपना एक ही चेहरा दिखाता है और उसका पिछला चेहरा इससे पहले कभी नहीं देखा गया था।

इसके बाद अमरीका ने भी खोजी यान भेजने शुरू किए। इनमें से कुछ यान चंद्रमा के चारों ओर चक्कर काटने लगे जिससे चंद्रमा के हर हिस्से के नक्शे बनाए गए।

खोजी यानों को इस तरह बनाया गया कि वे चंद्रमा पर बिना नष्ट हुए धीरे से उतर सकें। वहां वे चंद्रमा की सतह के नजदीक से चित्र उतार सकते थे और उसकी रासायनिक बनावट का मुआयना कर सकते थे। अमरीका और सोवियत संघ दोनों ने ये चीजें कीं, लेकिन अमरीका को बेहतर और ज्यादा विस्तृत परिणाम मिले।

खोजी यान

दूसरे खोजी यान और आगे तक गए। अमरीका खोजी यान अपने यन्त्रों को वीनस (शुक्र) के पास से ले गए तो उन्हें पता चला कि वह जितना सोचा जाता था उससे भी ज्यादा गर्म है। दूसरे अमरीका खोजी यानों ने मंगल (Mars) और बुध (Mercury) के पास जाकर नजदीक से चित्र उतारे और इन संसारों के विस्तृत नक्शे बनाए।
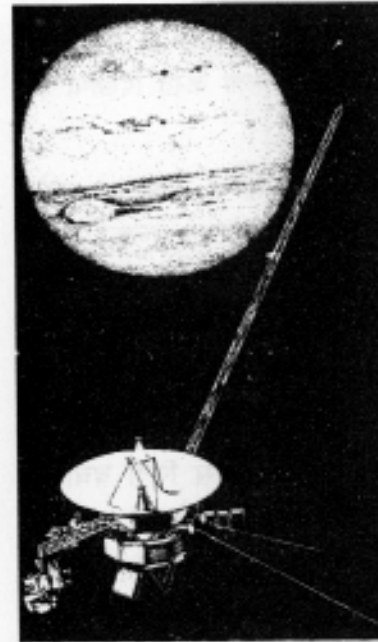
बुध काफी कुछ चंद्रमा जैसा दिखता है, हालांकि मंगल की काफी सतह पर चंद्रमा की तरह गड्ढे हैं, बाकी सतह पर ज्वालामुखी और खाइयां हैं। ऐसे निशान भी हैं जो सूखी हुए नदियों के तल जैसे दिखते हैं।

कुछ दूसरे अमरीका खोजी यान सुदूर विशालकाय बृहस्पति और शनि के पार 1970 और 80 के दशकों में भी गए। इनके चंद्रमाओं के चित्र भी खींचे। हर कहीं गड्ढे पाए गए। बृहस्पति का उपग्रह कैलिस्टो चिकनी बर्फ से ढका है और उसके चंद्रमाओं पर ढेरों सक्रिय ज्वालामुखियां हैं।

शनि के उपग्रह टाइटन के चारों ओर नाइट्रोजन का घना वायुमंडल है और शनि के चारों ओर के छल्ले सैंकड़ों उप-छल्लों से बने हैं।

रूसी लोगों को अपने खोजी यानों से इतनी सफलता नहीं मिली जितनी अमेरिकी लोगों को। हालांकि कई रूसी यान शुक्र पर उतरे भी और उन्होंने वहां का तापमान और दबाव नापा।

लेकिन क्या इन्सानों को कक्षा में स्थापित किया जा सकता है?

अंतरिक्ष में भेजा जा सकता है? आखिरकार हजारों सालों से कथाकारों ने अपनी कल्पनाओं में इन्सानों को अंतरिक्ष में यात्रा करते दिखाया है। क्या यह संभव था?

ऐसा कोई कारण नहीं दिखता था जिससे यह न किया जा सके। दोनों देशों (अमरीका तथा सोवियत संघ) ने जानवरों को भेजकर प्रयोग किए। दूसरे रूसी सैटेलाइट, जो 3 नवम्बर 1957 को छोड़ा गया था, में एक जिंदा कुत्ता था। कुत्ता यात्रा में तब तक जिंदा रहा जब तक उसे बिना कष्ट के जहर द्वारा खत्म नहीं कर दिया गया। उसे किसी भी प्रकार धरती पर वापस लाने का कोई तरीका न था।

बाद में जानवरों को भेजा जाने लगा और वापस जिंदा बचाकर लाया जाने लगा। अमरीका ने सफलतापूर्वक एक चिंपाजी को कक्षा में भेजा और वापस भी लाया। दोनों देशों ने लोगों को अंतरिक्ष में भेजने के लिए ट्रेनिंग देनी शुरू कर दी। अमरीका में अंतरिक्ष यात्रियों को ऐस्ट्रोनॉट (astronaut) कहते हैं, और सोवियत संघ में कॉस्मोनॉट (cosmonaut)।

सोवियत संघ ने पहली बार एक इंसान को कक्षा में छोड़ा। 12 अप्रैल 1961 को सोवियत अंतरिक्ष यात्री यूरी गैगरिन कक्षा में भेजे गए, पृथ्वी का एक चक्कर लगाकर वापस सुरक्षित भी बुलाए गए। वे अंतरिक्ष में जाने वाले पहले इंसान थे। (सात साल बाद वे एक वायुयान दुर्घटना में मारे गए।)

इसके बाद के सालों में अमरीका और सोवियत संघ दोनों ने बेहतर सैटेलाइट कक्षा में छोड़े जो लोगों को ले जा सकते थे। इनमें 2 या 3 लोगों को ले जाने वाले सैटेलाइट भी थे। 16 जून 1963 में एक रूसी सैटेलाइट में जाने वाली एक महिला थी।

इंसान अंतरिक्ष में ज्यादा और ज्यादा देर तक रुकने लगे। पहले घंटों तक, फिर दिनों तक, फिर हफ्तों तक। 1975 में तीन अमरीकी अंतरिक्ष यात्री स्काईलैब नाम के एक अंतरिक्ष स्टेशन में रॉकेट से गए
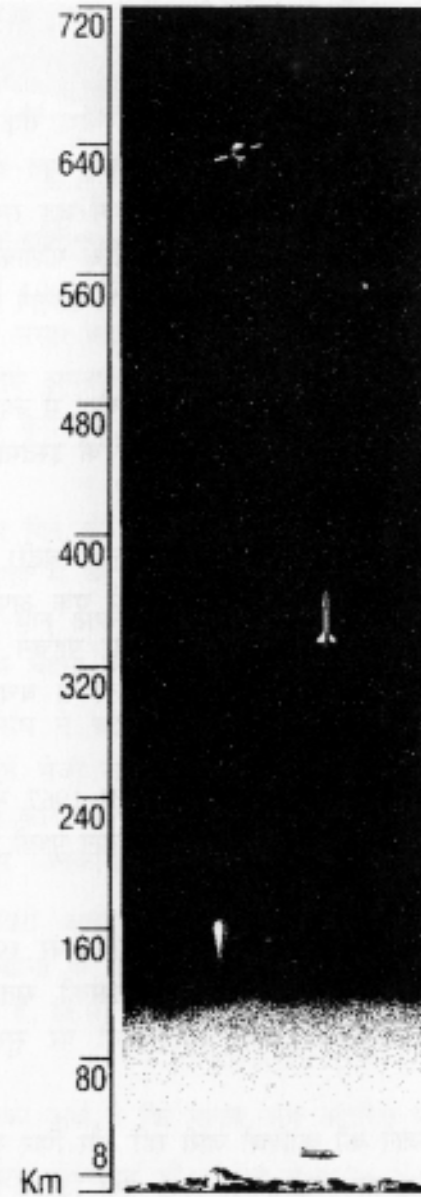
कौन कितने किलोमीटर ऊंचा

और उसके अंदर 3 महीने तक रहे। फिर वे सुरक्षित पृथ्वी पर वापस आ गए।

1960 के दशक में सैटेलाइट ज्यादा से ज्यादा रॉकेट यानों जैसे बनते गए। वे केवल कक्षा में स्थापित नहीं किए जाते थे। उनमें बैठे लोग उन्हें चला सकते थे। दो सैटेलाइट आपस में जुड़ सकते थे, लोग एक से दूसरे में यात्रा कर सकते थे। वे अंतरिक्ष-पोशाक (space-suit) पहनकर, अपना यान छोड़कर अंतरिक्ष में टहलने जा सकते थे और वापस आ सकते थे।

अमरीका ने सोवियत संघ के ऊपर इन प्रयोगों में ज्यादा से ज्यादा बढ़त हासिल कर ली। उन्होंने 'अपोलो' रॉकेटों के इस्तेमाल से 1970 से पहले चंद्रमा तक पहुंचने की योजना बनाई।

ये कोशिशें भी बिना विपत्ति के आगे नहीं बढ़ीं। 27 जनवरी 1967 को 3 अमेरिकी अंतरिक्ष यात्री जमीन पर एक अपोलो यान के परीक्षण में आग लगने से मारे गए। चंद्रमा पर पहुंचने की कोशिशें धीमी पड़ गईं और रॉकेटों को आग के खतरे से बचाने के लिए विकसित किया जाने लगा।

रूसियों को भी विपत्ति झेलनी पड़ी। अप्रैल 1967 में एक रूसी अंतरिक्ष यात्री उस समय मारा गया जब उसका यान पृथ्वी पर लौट रहा था।

लेकिन अमरीकी कोशिशें बंद नहीं हुईं। दिसम्बर 1968 में एक अपोलो रॉकेट यान चंद्रमा के पास गया, उसकी सतह के 112 किलोमीटर ऊपर 10 चक्कर काटे और धरती पर सुरक्षित वापस आया।

और नजदीक जाने की कोशिशें जारी रहीं और फिर जुलाई 1969 में अपोलो 11 रॉकेट यान चंद्रमा पर भेजा गया जिसमें तीन आदमी सवार थे। एक आदमी चंद्रमा की कक्षा में घूमता रहा, जबकि बाकी दो यान के एक हिस्से में सतह तक उतरे।

20 जुलाई 1969 को नील आर्मस्ट्रांग पहले मानव बने जिन्होंने किसी भी दूसरे संसार की सतह पर पांव रखा। जैसे ही उन्होंने चंद्रमा को छूने के लिए अपना पांव बढ़ाया, उन्होंने कहा, ''यह मनुष्य के लिए एक छोटा कदम है, पर पूरी मानवता के लिए एक बहुत बड़ी छलांग है।''

उस विशेष दिन के बाद, 5 अन्य अपोलो यान चंद्रमा पर उतरे। हरेक पिछले वाले से चंद्रमा पर ज्यादा देर रुका और खोज व प्रयोग किए। फिर हर यान अपने चालकों के साथ सुरक्षित पृथ्वी पर लौटा और अपने साथ चंद्रमा की चट्टानें वापस लाया।

सोवियत संघ ने चंद्रमा पर कोई मानव नहीं उतारे, पर उसने स्वचालित मशीनें भेजीं जो चंद्रमा के पदार्थ को वापस लेकर आईं। उसने स्वचालित कारें भी भेजीं जो कई हफ्तों तक चंद्रमा की भूमि पर चलती रहीं और जानकारी भेजती रहीं।

जब आखिरी अपोलो उड़ान दिसम्बर 1972 में खत्म हुई, अमरीका की चंद्रमा के प्रति रुचि कम हो गई। यद्यपि अन्य अंतरिक्ष की खोजें जारी हैं, किसी अन्य को चंद्रमा पर भेजने की योजना नहीं है।

क्या इसका अर्थ है कि मानव अब अंतरिक्ष में नहीं जाएंगे?

नहीं। प्रिंसटन के जेरार्ड डी ओनील ने 1974 में सुझाव दिया कि इंसान अंतरिक्ष में बस्तियां बसा सकते हैं। चंद्रमा पर खदानें बनाकर, वहां से खनिज लेकर कांच, धातु के गोले, बेलनाकार या अन्य आकार

चंद्रमा की कक्षा में डाले जा सकते हैं। हजारों या लाखों आदमी इन बस्तियों में रह सकते हैं।

इन बस्तियों में रहने वाले लोग विशाल उपकरण बना सकते हैं जो सूर्य की ऊर्जा इकट्ठी करके धरती पर भेजें। इस तरह धरती पर तब भी काम चल सकेगा जब सारा पेट्रोल और कोयला खत्म हो चुका होगा।

क्या हम यह करेंगे? कुछ लोग इससे सहमत नहीं हैं। वे सोचते हैं कि अंतरिक्ष बस्तियां बनाने और उनमें रहने का विचार व्यावहारिक नहीं है। लेकिन, ज्यादा पहले नहीं, लोग यह भी सोचते थे कि चंद्रमा पर पहुंचने का और उसकी सतह पर चलने का विचार बिल्कुल कपोल-कल्पित है।

अंतरिक्ष में भविष्य की सबसे बड़ी आशा है अमरीका का 'शटल' कार्यक्रम। 29 दिसम्बर, 1980, को पहली शटल कोलम्बिया, ठीक से उड़ी, पृथ्वी के कई चक्कर काटे और उतरी। पहली बार कोई अंतरिक्ष यान अंतरिक्ष से लौटकर एक हवाई जहाज की तरह उतरा और उसे दोबारा इस्तेमाल करना संभव है।

यह और भविष्य की शटलें सैटेलाइटों को कक्षा में ले जाएंगी। ये कुछ ढांचों के टुकड़ों को कक्षा में ले जाएंगी, फिर वापस आकर और ले जाएंगी। बाद में इंजीनियर ऊपर कक्षा में इन हिस्सों को जोड़कर बड़े ढांचे बनाएंगे जैसे पावर स्टेशन। ❐

नव जनवाचन आंदोलन

प्राचीन समय से लोग ऊंचे उड़ने के ख्याल से क्यों इतने चमत्कृत रहे हैं? हमने बाहरी अंतरिक्ष के विषय में कैसे जाना? आइजैक ऐसिमोव उड़ान के पहले प्रयासों की रोचक कहानी सुना रहे हैं। पहले राकेटों का छोड़ा जाना और आखिरकार पहले मानवों को अंतरिक्ष में भेजना – यह इंसान की उपलब्धियों की रोमांचक कथा है।

भारत ज्ञान विज्ञान समिति